SUṢAMĀ : Multidisciplinary Research Journal ISSN: 3107-4529
(International Peer-Reviewed & Refereed Journal)
Vol. 1, Issue-3, (Jul-Sep) 2025

# वैदिक वाङ्मय में रुद्र-शिवतत्त्व का विमर्श

**Avijit Mandal**
Research Scholar, Dept. of Literature
National Sanskrit University
Tirupati, Andhra Pradesh, India
E-mail: avijitmandal2402@gmail.com

**Abstract:**

"न भूमिर्न चापो न हेनिर्न वायु
न चाकाश आस्ते न तन्द्रा न निद्रा ।
न ग्रीष्मो न शीतो न देशो न वेषो
न यास्ति मूर्तिस्त्रीमूर्ति तमीडे ॥" (श्रीवेदसारशिवसत्त्वस्तोत्रम्)

सुदूर अतीत में जब विश्व के अधिकांश सभ्य देश सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से गहन तिमिर में आवृत्त थे तथा ज्ञान की प्रदीप्त ज्वाला के अभाव में अज्ञानता के अंधकार में लगभग पूर्णतः निमग्न थे, उसी समय भारतभूमि पर ज्ञानालोकधर्मी वेद–सूर्य का उदय हुआ। वेद को केन्द्र में रखकर ही विश्व के प्राचीनतम साहित्य, अर्थात् वैदिक साहित्य, का विकास हुआ। इस साहित्य ने अतीत के किसी रहस्यमय, निनादहीन, निःशब्द क्षण में स्वाभाविक रूप से आत्मप्रकाश किया, जो आज भी चिर रहस्यमय बना हुआ है।

वेद ही भारतीय साहित्य का आद्यतम साक्ष्य तथा सनातन धर्म का सर्वप्राचीन पवित्र ग्रंथ है। सनातनी परंपरा में वेद को "अपौरुषेय" तथा "नैर्वक्तिक" अर्थात् रचयिताशून्य माना गया है।

"इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति, स वेदः" (तैत्तिरीय संहिता)

वैदिक युग में प्रकृति के शान्त स्वरूप से उत्पन्न कल्याणकारी चिन्तन ने ही मानव–मन में मंगलमयी चेतना का संचार किया। इसी चेतना का प्रतीक रूप है शिव। वैदिक परंपरा में संहार एवं उग्रता के देवता 'रुद्र' तथा करुणा एवं कल्याण के अधिष्ठाता 'शिव'—दोनों ही देवत्व एक-दूसरे में अभिन्न रूप से मिलकर मानव धर्मविश्वास में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार रुद्र और शिव का समन्वित स्वरूप भारतीय अध्यात्म में विनाश और सृजन, भय और करुणा, उग्रता और मंगल—सभी के संतुलन का प्रतीक बनकर रह गया।

**Keywords:** ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, रुद्र, शिव।

**भूमिका—**

भारतीय अध्यात्म एवं धर्मदर्शन में शिव का स्थान अनन्य और अद्वितीय है। यद्यपि वैदिक साहित्य में शिव का स्वरूप मुख्यतः रुद्र नामक देवता के साथ सम्बद्ध है, तथापि शिव–कल्पना

का उद्गम वैदिक युग से भी प्राचीन माना जाता है। विशेष रूप से सिंधु घाटी अथवा तथाकथित सिंधु–सरस्वती सभ्यता (ईसा पूर्व २६००–१९००) में उपलब्ध पुरातात्त्विक साक्ष्य इस धारणा को पुष्ट करते हैं।

सिंधु सभ्यता में मातृ–पूजा का विशेष प्रचलन था, किन्तु इसके साथ–साथ पुरुष देवताओं की भी प्रतिष्ठा विद्यमान थी। पुरातत्त्वविद् सर जॉन मार्शल (John Marshall) द्वारा 1921 ई. में मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक प्रसिद्ध मुद्रा इस तथ्य की पुष्टि करती है। उस मुद्रा पर अंकित त्रिमुख आकृति को योगासनस्थ मुद्रा में दर्शाया गया है। आकृति जटाधारी, नग्न, उर्ध्वमेढ़ है; एक हाथ जानु पर टिकाए हुए, कटी पर करबंधनी, वक्ष पर आवरण और मस्तक पर युग्म–शृंग अंकित हैं। उसके नीचे मृग तथा चारों ओर हाथी, गैंडा, महिष और व्याघ्र की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।

मार्शल ने इस आकृति की पहचान "पशुपति महादेव" के रूप में की, यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस मत को विवादास्पद माना है। बाद के विद्वान जैसे स्टुअर्ट पिग्गट (Stuart Piggott) एवं आर. पी. चंदा (R. P. Chanda) ने भी इसे शिव–कल्पना के आद्य स्वरूप के रूप में स्वीकार किया। इस त्रिमुख देवता को "त्रिमुखा", "योगेश्वर", "महायोगी" आदि नामों से सम्भावित रूप में सम्बोधित किया गया। यह स्पष्ट संकेत करता है कि शिव की योगेश्वर और पशुपति स्वरूप की जड़ें अत्यन्त प्राचीन काल में निहित हैं।

सिंधु सभ्यता के "महायोगी पशुपति" और वैदिक रुद्र का मेल भारतीय अध्यात्म में शिव–तत्त्व की गहनता उद्घाटित करता है। वैदिक ऋचाओं में उनके उग्र और करुणामय आयाम स्पष्ट हैं, जो आगे चलकर शिव के व्यापक और सर्वसमावेशी रूप में विकसित होते हैं। आगामी विवेचन में ऋग्वेद से अथर्ववेद तक रुद्र–शिव तत्त्व का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

**वैदिक शिव—**

वैदिक साहित्य में शिव का स्वरूप मुख्यतः उग्र एवं संहारक देवता 'रुद्र' के रूप में प्राप्त होता है। किन्तु उपनिषदों एवं पुराणों तक आते–आते यह रूप मंगलकारी, करुणामय एवं कल्याणस्वरूप 'शिव' में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार सिंधु सभ्यता के "महायोगी पशुपति" और वैदिक रुद्र–शिव का समन्वय भारतीय अध्यात्म में एक व्यापक एवं सर्वांगीण शिव–तत्त्व का निर्माण करता है।

"दुर्ज्ञेया शांभवी माया तया संमोह्यते जगत्।"

भारतीय अध्यात्म–परंपरा में यह विश्वास प्रतिपादित है कि समस्त विश्व शांभवी माया से आवृत होकर मोहग्रस्त है। इस मायिक आच्छादन के परे अनन्त, ब्रह्मस्वरूप महा–रुद्र शिव ही वह परम–तत्त्व हैं, जिनकी ओर वेद और वेदांत संकेत करते हैं। वेदों को शिव का 'निःश्वसित' कहा गया है— अर्थात् वेद स्वयं परमेश्वर शिव से ही प्रकट हुए हैं। अतः समस्त वेदों एवं वेदांतों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शिव–तत्त्व की ही महिमा का गान किया गया है।

"ऋग्वेदोऽहमहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मनः।
अथर्वणश्च मन्त्रोऽहम् तथा चाङ्गिरसो वरः॥" (शिवगीता)

उपनिषदों में भी इसी सत्य का प्रतिपादन हुआ है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है—

"एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः, य इमान् लोकानीशत ईशनीभिः।" (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३।२)

अर्थात्—यह एकमात्र रुद्र ही है, दूसरा कोई नहीं; वही सम्पूर्ण लोकों का स्वामी है और उसी की ईश्वरी शक्ति से यह जगत् संचालित है। इसी प्रकार कैवल्य उपनिषद् में प्रतिपादित है—

"स एव कालोऽखिलकालकर्ता, स एव विश्वं परिगृह्य बिभर्ति।" (कैवल्य उपनिषद् ९)

इस प्रकार वेद, वेदांत और उपनिषदों का चरम सत्य स्वयं परमेश्वर शिव ही हैं; शिवमय ब्रह्म ही वेद–वेदांत और उपनिषद् की साध्य सत्ता है।

**ऋग्वेद में रुद्र-शिवतत्त्व—**

वेदचतुष्टय में सर्वप्राचीन ऋग्वेद है। इसमें विविध देवताओं की स्तुतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। ऋचाओं की कल्पना की मधुरता, काव्यात्मक सुषमा और रस–समृद्धि उन्हें अनुपम बना देती है। ऋग्वेद में रुद्रदेवता के केवल तीन सूक्त प्रत्यक्ष प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त, एक सूक्त के अंश में तथा दूसरे सूक्त में सोमदेवता के साथ उनका आह्वान किया गया है। संपूर्ण ऋग्वेद में लगभग ८५ बार 'शिव' नाम का उल्लेख हुआ है।

महर्षि कण्व (ऋग्वेद १।४३), कौत्स (ऋग्वेद १।११४), गृत्समद (ऋग्वेद २।३३) तथा वशिष्ठ (ऋग्वेद ८।४६) ने रुद्र के स्वरूप और महत्त्व का निरूपण किया है। रुद्र को मुख्यतः अन्तरिक्ष–स्थान का देवता माना गया है। यद्यपि वे केवल तीन सूक्तों में प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होते हैं, तथापि उन्हें अत्यन्त शक्तिशाली एवं भयावह देवता के रूप में चित्रित किया गया है।

'रुद्र' शब्द का अर्थ है—भीषण, भयावह, आतंककारी। अंतकाल में जो समस्त प्राणियों को रुला देते हैं, वही रुद्र कहलाते हैं। पुनः, जन्म के समय जो स्वयं विकट क्रन्दन करते हैं और अपने उस कर्णभेदी नाद से सम्पूर्ण विश्व को कंपायमान कर देते हैं, वे भी रुद्र ही हैं।

महर्षि गृत्समद का प्रसिद्ध रुद्रसूक्त (ऋग्वेद २।३३) विशेष रूप से उल्लेखनीय है :

"शं नो रुद्रः शं मयस्कृधि, शं नः शं मयोभुव।
शं नः शं मयस्कृधि॥"

ऋग्वेद (१।४३।४) में रुद्र की मंगलकारी छवि का आह्वान हुआ है :

"शं नः शम्भुरजाता, शं नः शं भवतु द्यवाः।"

मनुष्य–रूपधारी रुद्र को देवगणों का वैद्य माना गया है। वे रोगनाशक तथा औषधियों के अधिपति हैं। ऋग्वेद में रुद्र को मरुतों के पिता तथा पति रूप में चित्रित किया गया है। पृष्णि नामक मेघ से रुद्र ने मरुतों को उत्पन्न किया। जगत्–विनाश की क्षमता से सम्पन्न रुद्र को जंगली वराह के समान माना गया है; अतः उन्हें स्वर्ग का रक्ताभ वराह कहा गया है। उनके शस्त्र

हैं—पिनाक नामक धनुष तथा सृक् नामक वज्र। विद्युत् को उनकी कृपाण के साथ तुलना की गई है।

यद्यपि वे संहारक हैं, तथापि वही रुद्र कल्याणकारी शिव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्हीं के उद्देश्य से एक मंत्र की रचना हुई, जो आगे चलकर "महामृत्युञ्जय मंत्र" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

"ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृताॐत्॥" (ऋग्वेद ७।५९।१२)

ऋग्वैदिक वाङ्मय में रुद्र का स्वरूप केवल संहारक देवता तक सीमित नहीं है, अपितु वे बहुविध गुणों से युक्त तथा समस्त कर्मधर्म के अधिष्ठाता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। 'पति रुद्र' रूप में वे सम्पूर्ण प्राणिजगत् के सार्वभौम स्वामी हैं; 'मन्त्रणा-विशारद रुद्र' के रूप में वे ज्ञान, चिन्तन और विवेक के अधिपति हैं; 'वणिक् रुद्र' स्वरूप में वे लेन-देन, अर्थनीति एवं लोक-समृद्धि के प्रेरक माने गए हैं; और 'वनस्पति रुद्र' के रूप में वे लता-गुल्म तथा वृक्षों के पालन-पोषणकर्ता हैं। इस प्रकार रुद्र का व्यक्तित्व सर्वांगपूर्ण है—जो संहार में ही नहीं, अपितु सृष्टि-पालन, ज्ञानप्रवर्तन और आर्थिक समृद्धि के नियामक रूप में भी प्रकट होता है।

रणभूमि में रुद्र महाशब्दकारी देवता हैं, जिनकी भीषण गर्जना धर्मसंरक्षण और अधर्मविनाश का उद्घोष करती है। गृहजीवन में वही पशुपालक रुद्र ग्राम्य संस्कृति और पशुधन के रक्षक रूप में प्रतिष्ठित हैं। पापनाशक शर्व के रूप में वे असत्य और अधर्म का संहार करते हैं, जबकि प्राणिजगत् के पालक रूप में जीवन की धारा को धारणा एवं संरक्षण प्रदान करते हैं। इस प्रकार रुद्र संहारक और पोषक —उभय शक्ति का समन्वित दार्शनिक स्वरूप हैं।

"नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।" (ऋग्वेद १०.९२.९)

रुद्र को वज्र का द्योतक माना गया है। वज्रपात, अशनि और अन्य आकाशीय घटनाएँ उनकी ही बाह्य प्रकृति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मानी गईं। वे सर्वात्मा, सर्वकर्ता, स्वतन्त्र एवं सर्वभावन—अर्थात सम्पूर्ण जगत् के अन्तर्हृदय में स्थित नियन्ता।

रुद्र की विशेषता यह है कि वे एक साथ आर्य और अनार्य, उच्चवर्ण और नीचवर्ण, सत् और असत्—सभी के उपास्य और रक्षक हैं। वे एक ही समय में उग्र और शान्त, घोर और शिव, भयङ्कर और शंकर, तथा संहारक और पालक।

ऋग्वेद में प्रस्तुत रुद्र-चित्रण शिव की एक सजीव मूर्ति का आभास कराता है—मानो ध्यानस्थ योगी का दार्शनिक प्रतिरूप हो। उनका शरीर बलिष्ठ एवं सुगठित, अंग-प्रत्यंग अनुपम सौन्दर्य से परिपूर्ण और तेजस्विता से ओतप्रोत है। वैदिक ऋषियों ने उन्हें सर्वोच्च देवता रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनके बाहुबल में अपरिमित शक्ति, देहकान्ति में आदित्य का तेज, दिव्यता में शुक्र का प्रभामण्डल तथा भूषणों में सुवर्ण की आभा विद्यमान है। इन विशेषणों के माध्यम से रुद्र का रूप न केवल दैदीप्यमान महिमा का द्योतक बनता है, बल्कि वे ऋग्वैदिक वाङ्मय में अद्वितीय महादेव स्वरूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

"यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते।
श्रेष्ठो देवानां वसुः" (ऋग्वेद १।४३।५)

रुद्र सुगठित ओष्ठाधर के कारण सुसिप्र कहे जाते हैं तथा कोमल उदर के कारण वे ऋदुदर नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेद में उनकी इस रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा इस प्रकार की गई है—

"हवीमाभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेंभी रुद्रं दिषीयः।
ऋदुदरः सुहवो मा नों अस्यै बभ्रुः सुसिप्रो रीरधन्मनायै॥" (ऋग्वेद १।११४।५)

मस्तक पर उनके कनकाभ-जटाकलाप के कारण वे कपर्दी नाम से अभिहित हैं। ऋग्वेद में कहा गया है—

"इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय ब्रमरामहे मतीः।"

सदैव हसितमुख, सुखप्रदाता, देवदेव महादेव रुद्र, जिनका शरीर वर्ण्य कपिलवर्ण का है और जो उष्णीष धारण करते हैं। उनके केश कभी रक्तवर्ण तो कभी नीलवर्ण होते हैं, इसलिए उन्हें हरिकेश कहा जाता है। नीलकण्ठ और सशस्त्र-अक्षियुक्त महादेव रथ पर विचरण करते हैं, धनुष-बाण तथा भयानक वज्र-आयुध से सुसज्जित रहते हैं। 'रुद्र' नाम की सार्थकता उनके भयप्रद और संहारक कर्मों में स्पष्ट झलकती है। क्रूरकर्मा, भीमदर्शन और संहारक, जिनका क्रोध वज्र के समान अत्यंत भयंकर है। अत्यंत शक्तिशाली, शीघ्रगामी, युद्ध में अजेय, तेज में अदृश्य तथा सामर्थ्य में अप्रतिद्वंद्वी होने के कारण देवों और मनुष्यों के समस्त आचरण उनकी दृष्टि में रहते हैं। प्राचीन होते हुए भी सदा युवा, अनादि होते हुए भी नित नूतन, यही कारण है कि उन्हें 'ईशान' अथवा 'ईश्वर' की संज्ञा दी गई है। देव, मनुष्य और समस्त प्राणियों के रक्षक के रूप में उनका प्रतिष्ठान अटल और अभेद्य है।

रुद्र वैद्यराज हैं—वे भिषकों में श्रेष्ठ भिषक् हैं। श्रेष्ठ चिकित्सक के रूप में वे समादृत हैं। उनकी औषधि का नाम 'जलाभेषज' है, जिसका अर्थ है जलाशय में उत्पन्न औषधि। इसे कभी सोम, कभी वर्षा अथवा जीवनधारा के रूप में विविध प्रकार से व्याख्यायित किया गया है।

"क्वास्य ते रुद्र मृडयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः"

रुद्र औषध-विद् थे, उत्तम चिकित्सक और परमश्रेष्ठ रोग-निवारक। इस कारण वैदिक ऋषियों ने केवल अपने पशु और ग्राम को रोगमुक्त रखने के लिए ही नहीं, बल्कि दुरारोग्य व्याधियों से मुक्ति पाने और स्वस्थ जीवन प्राप्त करने के लिए भी उनकी स्तुति की और उनकी शरण ग्रहण की। ऋग्वेद में कहा गया है—

"त्वादेत्तेभी रुद्र सन्तमेभिः शतं हिमा अर्पय भेषजेभिः।
व्यस्मदद्वेषो वितरं व्यहो व्यमीवाश्चतयस्वा विषूचीः॥" (२,३३/२)

वैदिक ऋषि रुद्र के संहारक रूप से भयभीत थे और सदा यह प्रार्थना करते थे कि पुत्र, पशुबल और ग्राम को कहीं रुद्र रुष्ट होकर विनष्ट न कर दें। इसी कारण वे निरंतर उनकी स्तुति करते थे। वे प्रार्थना करते थे—हे रुद्र! हे वैद्युतात्मन्! आप क्रुद्ध न हों और अपना प्रचण्ड विद्युत्-

तुल्य क्रोध त्याग दें। ऋग्वेद में इस प्रार्थना का स्वरूप इस प्रकार मिलता है—

"मा न स्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वषु रीरिषः।
वीरान्मा नों रुद्र भामितो वधिर्हिविष्यन्त सदमत्त्वा हवामहे॥" (२/३३/८)

रुद्र त्रिभुवन के रक्षक हैं। रुद्र एक बलिष्ठ, सुशोभित योद्धा हैं। उनके हाथ में सुवर्ण निर्मित धनुष-बाण रहता है। उनके धनुष का नाम 'पिनाक' है। उनके तरकस में सैकड़ों बाण संचित रहते हैं। दुष्टों के दमन और शिष्टों के पालन के लिए उनके हाथ में दैदीप्यमान खड्ग रहता है। वे 'सृक्' नामक वज्र को भी धारण करते हैं। शरीर की रक्षा के लिए वे कवच और बर्मा पहनते हैं।

"धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्यं सहस्रघ्निं शतवधं शिखण्डिनम्।"

रुद्र का शरीर कृत्तिवास से आच्छादित है। वे अति शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाते हैं। सब कहते हैं कि वे प्रवाहित नदी को भी अवरुद्ध कर सकते हैं। दुष्ट, उद्धत, बलदर्पी पापी और अनाचारियों को वे अपने बाणों से चूर्ण-विचूर्ण कर देते हैं।

भगवान् रुद्र भक्तों की भक्ति से और अत्यल्प दान या उपासना में ही संतुष्ट हो जाते हैं। रुद्र प्राणियों के अधिपति हैं। यद्यपि वेदों में रुद्र का संहारकारी रूप ही विशेषतः दृष्ट होता है, तथापि वे भक्तों के प्रति सदा अभय प्रदान करने वाले, वरदानी, कल्याणकारी 'भूतपति' के रूप में प्रकट होते हैं। भक्तों के पालनकर्ता रुद्र ही हैं।

**सामवेद में रुद्र-शिवतत्त्व—**

"गीयमानस्य साम्नः आश्रयभूता ऋचः सामवेदे समाम्नायन्ते" (सामवेद भाष्यभूमिका)

सामवेद, जिसे "गायनवेद" अथवा "गेयवेद" कहा जाता है, ऋग्वैदिक मंत्रों का संगीतात्मक रूप है और विशेष रूप से यज्ञ में स्तोत्र-गान हेतु प्रयुक्त होता था। इसमें रुद्र के लिए कोई स्वतन्त्र सूक्त या काण्ड नहीं है, किन्तु अनेक मंत्रों में अन्य देवताओं के साथ उनका उल्लेख मिलता है। अग्नि की स्तुति में उन्हें रुद्र कहा गया है, उदाहरणतः—

"आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥" (सामवेद, पूर्वार्चिक ६९/७)

"त्वमग्ने वसो रुह रुद्रां आदित्यान् उत।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं धृतव्रतम्॥" (सामवेद ९६/७)

कुछ स्थानों पर 'रुद्र' शब्द इन्द्र और अन्य देवताओं के लिए भी प्रयुक्त हुआ है—

"अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनेषु ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥" (सामवेद १५६३/९)

इस प्रकार सामवेद में रुद्र का उल्लेख मुख्यतः यज्ञ-संगीत और अन्य देवताओं के संदर्भ में होता है, और उनका स्वरूप अग्नि और इन्द्र के माध्यम से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि रुद्र केवल संहारक नहीं, वरन् यज्ञ-संगीत और देवताओं के विविध रूपों में प्रतिष्ठित हैं।

**यजुर्वेद में रुद्र-शिवतत्त्व—**

चारों वेदों में यजुर्वेद यज्ञप्रधान होने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। शुक्लयजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में शतरुद्रीय होममन्त्र संकलित है, जिसमें ६६ मन्त्र निहित हैं। इस अध्याय को 'रुद्राध्याय' नाम से भी जाना जाता है। सभी मन्त्र रुद्र की स्तुति तथा उनसे कल्याण की प्रार्थना करते हैं।

'रुद्र' शब्द 'रुद्' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ क्रन्दन है। जन्म के समय शिशु का क्रन्दन और मृत्यु के समय परिजनों का विलाप— दोनों ही रुद्र की संज्ञा में ध्वनित होते हैं।

शतरुद्रीय का पाठ पुण्यप्रद और अहंकार-नाशक माना जाता है, और शिवपुराण तथा महाभारत (अनुशासन पर्व 14/3) में इसके महत्त्व का विशेष उल्लेख है। शुक्लयजुर्वेद (16/1) में कहा गया है—

"रुद्राध्यायपठनेन नरः बहुपुण्यं लभते।
तस्य सर्वाणि पापानि नश्यन्ति,
तेन तस्य अहंकारः नश्यति,
ततः शिवत्वं संजायते॥"

प्रारंभिक मंत्रों (16/2–3) में उनके बाण, धनुष और बाहु की वंदना की गई है, और इसमें प्रार्थना की गई है कि वे धनुष शिथिल करें, बाण निरस्त करें तथा संसार की रक्षा करें—

"नमस्ते अस्तु भगवन् विश्वेश्वराय महादेवाय त्र्यंबकाय त्रिपुरान्तकाय..."

रुद्र देवभिषक् (16/5) अर्थात् दिव्य वैद्य, जो विषधर सर्पों और दुष्ट राक्षसों का संहार करते हैं। उनका वर्ण-चित्रण भी बहुरूप— प्रातःकाल ताम्रवर्ण, संध्याकाल अरुणवर्ण और अन्य समय पिंगलवर्ण। अस्तकालीन सूर्य की रक्ताभ आभा और नीलिमा से वे नीलग्रीव और विलोहित कहे गए।

शुक्लयजुर्वेद (16/9–12) में रुद्र की सर्वसमावेशकता प्रमुख। वे आर्य-द्विजातियों के ही नहीं, अपितु अनार्य, अन्त्यज, व्याध, रथकार, कुम्हार, लोहार, चरवाहे, यहाँ तक कि गोधन, अश्व और कुत्तों के भी पालनकर्ता हैं। सज्जनों के साथ असज्जनों, चोरों और दस्युओं तक के रक्षक। उनके स्वरूप में विरोधी तत्त्वों का सामंजस्य— उग्र भी और शान्त भी, संहारक भी और पालनकर्ता भी।

ऋग्वेद (1/114/5) में रुद्र को वज्र एवं वर्षा के देवता कहा गया, किन्तु शुक्लयजुर्वेद में वे सूर्यस्वरूप भी माने गए। सूर्यकिरणों को जटा के समान मानकर उन्हें कपर्दी (16/10) कहा गया। अस्तकालीन सूर्य की रक्ताभ आभा और धूमिल नीलिमा से नीलकण्ठ नाम उत्पन्न।

"असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः॥" (शुक्लयजुर्वेद 16/6)

रुद्राध्याय में उनके अनेक नाम— पशुपति, शम्भु, शिव, शंकर, गिरीश, शितिकण्ठ,

नीलग्रीव, कपर्दी आदि— उल्लिखित। ये नाम उनके विविध स्वरूप और कार्य के प्रतीक।

**अथर्ववेद में रुद्र-शिवतत्त्व—**

अथर्ववेद चारों वेदों में अर्वाचीनतम है। इसके अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद से ग्रहण किए गए हैं। इसे कभी-कभी "जादुई सूत्रों का वेद" तथा "ब्रह्मवेद" भी कहा जाता है। अथर्ववेद में रुद्र केवल एक उग्र, भयानक और क्रूर देवता नहीं हैं; वे स्वयं ब्रह्मस्वरूप, सर्वव्यापी परमेश्वर, पशुपति, भ्रात्यनायक, दुष्टविनाशक, रोगनाशक, अग्निरूप तथा मरुतगणों के पिता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ऋग्वेद के उग्र रुद्र अथर्ववेद में रूपान्तरित होकर मंगलकारी महादेव के रूप में प्रतिपादित होते हैं। वे भयावह अस्त्रधारी विनाशक होने के साथ-साथ जगत के पालनकर्ता और लोकहितकारी चिकित्सक भी हैं। अतः अथर्ववेद के रुद्र में ही आगामी शैवदर्शन के शिवतत्त्व का बीज निहित है।

ऋग्वेद में जिस रुद्र का चित्रण उग्र व भयावह रूप में हुआ है, अथर्ववेद में वही देवता बहुआयामी स्वरूप ग्रहण करते हैं। यहाँ वे न केवल दुष्टसंहारक हैं, बल्कि ब्रह्म, पशुपति, चिकित्सक, अग्निरूप और मरुतों के जनक भी हैं। यही विविधता उन्हें वैदिक परिप्रेक्ष्य से आगे बढ़ाकर पुराण और दर्शन में "परमेश्वर" के रूप में प्रतिष्ठित करती है। अथर्ववेद में रुद्र के ब्रह्मत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है—

"तद् ब्रह्म अभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत्" (अ.वे. 15.1.3)

ऋग्वेद का उग्ररुद्र महादेव-ब्रह्म में परिणत हो जाता है—सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और जगत्-नियन्ता, और अथर्ववेद में रुद्र को पहली बार पशुपति कहा गया है—

"य इशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्" (अ.वे. 2.31.1)

वैदिक यज्ञ की पृष्ठभूमि में वे जहाँ पशुबली के अधिकारी प्रतीत होते हैं, वहीं शैवदर्शन में वे जीवात्माओं के मुक्तिदाता पशुपति शिव के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। रुद्र का एक और महत्त्वपूर्ण रूप अथर्ववेद में दुष्टविनाशक के रूप में मिलता है। वे दैत्य, राक्षस, पिशाच और भयावह सर्पों तक का संहारक रूप धारण करते हैं—

"रुद्रेणार्घकघातिना तेन मा समरामहि" (अ.वे. 11.2.7)

उनकी क्रोधाग्नि और ज्वर, विष तथा विद्युत् जैसे अस्त्र भयंकर प्राणघातक माने गए हैं। इसीलिए ऋषिगण उनसे प्रार्थना करते हैं—

"मानो हिंसीः पितरं मातरं च..." (अ.वे. 11.2.29)

अथर्ववेद में रुद्र को एक महान वैद्य के रूप में चित्रित किया गया है, जो रोगनाशक, औषधियों के अधिपति और जनकल्याणकारी चिकित्सक हैं, और जिनका एक नाम "जलाषभेषज" है, अर्थात् वे जल-आधारित औषधियों के माध्यम से रोगनिवारण करते हैं।

"नमो रुद्राय नमोस्तु तक्मने... नमो औषधीभ्यः" (अ.वे. 6.20.2)

अथर्ववेद में रुद्र को अग्निरूप कहा गया है, जो सृष्टि के मूल शक्ति, प्रलय के दाहक और

अन्नरूप पोषणकर्ता हैं—

"य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये" (अ.वे. 7.27.1)

अथर्ववेद में रुद्र को मरुतों का पिता कहा गया है। इस प्रकार वे वृष्टि, मेघ और वायु-शक्ति के स्रोत माने गए हैं।

**निष्कर्ष—**

भारतीय वैदिक वाङ्मय में रुद्र और शिव किसी दो भिन्न देवता नहीं, अपितु एक ही परम सत्ता के विविध आयाम हैं। रुद्र के उग्र और संहारक रूप का वर्णन जहाँ वैदिक सूक्तों में हुआ है, वहीं उनकी करुणामय, शान्त और भक्तवत्सल सत्ता शिव के रूप में प्रतिष्ठित है। यह द्वैत उनके चरित्र का सार है—उग्रता और सौम्यता, संहार और सृजन, तप और करुणा—सबका अद्वितीय सामंजस्य।

ऋग्वेद में कहा गया है—

"नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।" (ऋग्वेद १०.९२.९)

यजुर्वेद में भी रुद्र की महिमा का निरूपण करते हुए प्रार्थना की गई है—

"नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमः।" (यजुर्वेद, श्रीरुद्रम ५)

शिव का त्यागमय जीवन—चिताभस्म, व्याघ्रचर्म, सर्प, धतूरा—इस तथ्य का प्रतीक है कि वे लोकाचार से परे एक दार्शनिक आदर्श हैं। उनकी सत्ता केवल मिथकीय आख्यानों में नहीं, बल्कि योग, ध्यान और तपश्चर्या की परंपरा में भी रची-बसी है।

अतः वैदिक साहित्य में शिव-तत्त्व हमें यह शाश्वत सत्य प्रदान करता है कि संहार और सृजन, करुणा और उग्रता—ये विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। इसी संतुलन में शिव का वैश्विक और सार्वभौमिक स्वरूप प्रतिष्ठित है।

**Bibliography**


- डॉ योगीराज बसु। वेदेर परिचय। फार्मा केएलएम प्राइवेट लिमिटेड। कोलकाता। 2013
- आशुतोष चट्टोपाध्याय। वैदिक साहित्य परिचय। आनंद पब्लिशर्स। कोलकाता। 1980
- श्रीमती शांति बंदोपाध्याय। वैदिक पाठ संकलन। सदेश। कोलकाता। 2013
- डॉ विश्वरूप साहा। वेद संचयनम। सदेश। कोलकाता। 2007
- बिमलानंद भट्टाचार्य। उपनिषदेर शिवतत्त्व। विश्वभारती प्रकाशनी, शांति निकेतन। 1975
- सुरेशचंद्र राय। हिंदुधर्मेर इतिहास। ग्रंथ निकेतन। कोलकाता। 1987
- स्वामी विद्यनंद। वेदेर रुद्रशिव। उदय प्रकाशनी। कोलकाता। 1965
- शिवगीता। बांग्ला अनुवाद: अन्नदाशंकर राय। मित्र एंड घोष पब्लिशर्स। कोलकाता। 1970
- शशिभूषण मुखोपाध्याय। सिंधु सभ्यता ओ वैदिक संस्कृति। दे'ज पब्लिशिंग। कोलकाता। 1992
- धीरेंद्रनाथ बंदोपाध्याय। संस्कृत वाङ्मयस्य इतिहास। संस्कृत पुस्तक भंडार । कोलकाता। 2014
- वैदिक सूक्त संग्रह। गीताप्रेस। गोरखपुर। 2011
- डॉ श्रीमती शांति बंदोपाध्याय। वैदिक साहित्येर रूपरेखा। संस्कृत पुस्तक भंडार। कोलकाता, 2003

- डॉ सोमदत्ता चक्रवर्ती। वैदिक साहित्य प्रसंग। संस्कृत बुक डिपो। कोलकाता। 2000
- हिरण्मय बंदोपाध्याय। ऋग्वेद संहिता। हरफ प्रकाशनी। कोलकाता। 2013
- परितोष ठाकुर। सामवेद संहिता। हरफ प्रकाशनी। कोलकाता। 2001
- श्री विजन विहारी गोस्वामी। यजुर्वेद संहिता। हरफ प्रकाशनी। कोलकाता। 2013
- श्री विजन विहारी गोस्वामी। अथर्ववेद संहिता। हरफ प्रकाशनी। कोलकाता। 2013